International Journal of All Research Education and Scientific Methods (IJARESM),
ISSN: 2455-6211, Volume 13, Issue 5, May-2025, Available online at: www.ijaresm.com

हर्षवर्धन के शासन में सांस्कृतिक नवजागरण और नैतिक शासन का विश्लेषण: एक ऐतिहासिक और दार्शनिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. मिथुन कुमार

स्नातकोत्तर प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
टी. एम. बी. यू., भागलपुर

---****************---

भारत के प्राचीन इतिहास में हर्षवर्धन का काल एक ऐसे युग के रूप में देखा जाता है जिसने गुप्तोत्तर काल की राजनीतिक अस्थिरता के पश्चात पुनः स्थायित्व, सांस्कृतिक नवजागरण और नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा को जन्म दिया। हर्षवर्धन ने थानेश्वर से शासन प्रारंभ कर कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया और एक सशक्त तथा संगठित साम्राज्य की नींव रखी। उनके शासन में पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल के विस्तृत भूभाग सम्मिलित थे, जिससे यह सिद्ध होता है कि उन्होंने राजनीतिक दृष्टि से एक सुदृढ़ और व्यापक साम्राज्य का निर्माण किया। हर्षवर्धन के शासनकाल की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उनका सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टिकोण था। वे स्वयं एक विद्वान सम्राट थे, जिन्होंने संस्कृत नाटकों की रचना की, जिनमें *नागानंद*, *रत्नावली* और *प्रियदर्शिका* प्रमुख हैं। उनकी दरबार में अनेक विद्वान और कवि उपस्थित रहते थे, जिनमें प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग का वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि हर्षवर्धन ने शिक्षा, धर्म और कला के क्षेत्र में उदार नीतियों का पालन किया। नालंदा विश्वविद्यालय का संरक्षण, बौद्ध धर्म के प्रति सहिष्णुता तथा ब्राह्मणों और अन्य धर्मावलंबियों को दान देना उनके धर्मनिरपेक्ष और नैतिक चरित्र का प्रमाण है। नैतिक शासन के संदर्भ में हर्षवर्धन की नीतियाँ उल्लेखनीय थीं। वे प्रजा के कल्याण को सर्वोपरि मानते थे और दान, धर्म तथा सेवा को शासन का अनिवार्य अंग समझते थे। प्रत्येक पाँचवें वर्ष प्रयाग में विशाल महासभा का आयोजन किया जाता था, जिसमें वे दान-पुण्य करते, जरूरतमंदों की सहायता करते और धार्मिक विचारों का आदान-प्रदान होता। यह न केवल सामाजिक समरसता का प्रतीक था, बल्कि राज्य की नैतिक चेतना को भी दर्शाता था अतः यह कहा जा सकता है कि हर्षवर्धन का युग केवल राजनीतिक स्थायित्व का ही प्रतीक नहीं था, बल्कि उसने भारतीय इतिहास को एक नए सांस्कृतिक और नैतिक आयाम प्रदान किया। उनका शासन धर्म, कला, साहित्य, शिक्षा और नैतिक मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा का स्वर्णिम काल था, जिसने भारतीय संस्कृति की जड़ों को और भी गहरा और विस्तृत बनाया।

बीज शब्द: हर्षवर्धन ,सांस्कृतिक नवजागरण, *नागानंद*, *रत्नावली* ,*प्रियदर्शिका*, ह्वेनसांग

हर्षवर्धन भारत के प्राचीन इतिहास में एक ऐसे महान सम्राट के रूप में प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद उत्पन्न राजनीतिक विघटन और अस्थिरता के काल में एक सशक्त, संगठित और सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध साम्राज्य की स्थापना की। वे उत्तर भारत में पुष्यभूति वंश के अंतिम और सबसे प्रतापी शासक थे। यह वंश मूलतः थानेश्वर (वर्तमान हरियाणा) में स्थापित था। हर्ष के पिता प्रभाकरवर्धन एक साहसी और महत्वाकांक्षी शासक थे, जिन्होंने हूणों के आक्रमणों का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया और उत्तरी भारत में अपनी शक्ति का आधार मजबूत किया। हर्षवर्धन के जीवन की दिशा उस समय बदल गई जब उनके बड़े भाई राजवर्धन, जो पहले राज्य के उत्तराधिकारी थे, की हत्या मालवा के शासक शशांक ने कर दी। यह घटना न केवल व्यक्तिगत शोक का कारण बनी, बल्कि इससे

राजनीतिक संकट भी उत्पन्न हुआ। उस समय हर्षवर्धन की आयु मात्र सोलह वर्ष थी, किंतु उन्होंने अत्यंत बुद्धिमत्ता, धैर्य और पराक्रम के साथ सत्ता संभाली। उन्होंने न केवल अपने राज्य की सुरक्षा सुनिश्चित की, बल्कि अपने भाई की हत्या का बदला लेने और अपनी बहन राज्यश्री की सुरक्षा हेतु मालवा और कन्नौज के शासकों के विरुद्ध अभियान भी चलाए। इन विजयों के बाद उन्होंने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाकर एक विस्तृत और शक्तिशाली साम्राज्य की नींव रखी।[1]

हर्षवर्धन के साम्राज्य की सीमाएँ उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक, पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में पंजाब तक विस्तारित थीं। उन्होंने अनेक युद्ध लड़े, किंतु शासन करने के बाद उनका व्यक्तित्व अधिक परिपक्व और धर्मपरायण हो गया। दक्षिण भारत की ओर उनका अभियान चालुक्य राजा पुलकेशिन द्वितीय द्वारा रोका गया, जो उस समय दक्षिण भारत का एक सशक्त शासक था। इस संघर्ष के बाद हर्ष ने दक्षिण के बजाय उत्तर भारत पर ही अपना ध्यान केंद्रित किया और वहां स्थायी प्रशासन की स्थापना की।[2] हर्षवर्धन की ख्याति उनके शासन की नैतिकता, सांस्कृतिक उत्कर्ष और धर्मनिरपेक्षता के लिए भी थी। उन्होंने धर्म और विद्या के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किए। नालंदा विश्वविद्यालय का उन्होंने संरक्षण किया, जहाँ से विद्वान और भिक्षु पूरे एशिया में ज्ञान का प्रचार करते थे। हर्षवर्धन ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनाई और शैव, वैष्णव, बौद्ध एवं जैन सभी सम्प्रदायों को आदर एवं सहयोग प्रदान किया। चीनी यात्री ह्वेनसांग का भारत आगमन और उनका विस्तृत यात्रा विवरण हर्ष के शासन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को और अधिक प्रमाणिकता प्रदान करता है। ह्वेनसांग ने लगभग 15 वर्षों तक भारत में भ्रमण किया और हर्षवर्धन से गहन संपर्क में रहे। उन्होंने सम्राट को न्यायप्रिय, करुणामयी, विद्वान और लोक हितकारी बताया। [3] हर्ष द्वारा प्रयाग में आयोजित महासभा का विवरण विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसमें हजारों साधु-संत, विद्वान और नागरिक एकत्र होते थे और सम्राट दान-दक्षिणा व धर्मचर्चा करते थे। इस महासभा के माध्यम से हर्ष ने धर्म और नैतिकता को सार्वजनिक जीवन में स्थापित किया ।इस प्रकार हर्षवर्धन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि केवल एक सामरिक विजेता की नहीं, बल्कि एक दूरदर्शी, नैतिक, और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध सम्राट की है। उन्होंने गुप्तोत्तर भारत को राजनीतिक स्थायित्व प्रदान किया, संस्कृति और विद्या का पुनर्जागरण किया और भारतीय इतिहास में एक ऐसा युग स्थापित किया जो आज भी आदर्श शासन की मिसाल माना जाता है।[4]

हर्षवर्धन का शासनकाल सांस्कृतिक पुनर्जागरण का एक स्वर्णिम अध्याय माना जाता है। गुप्त काल के बाद जब साहित्य, कला और शिक्षा में गिरावट आ रही थी, उस समय हर्ष ने एक ऐसे सांस्कृतिक आंदोलन की शुरुआत की जिसने भारतीय संस्कृति को एक बार फिर ऊँचाइयों तक पहुँचाया। वे न केवल एक महान शासक थे, बल्कि स्वयं एक प्रतिभाशाली लेखक, कवि और साहित्य संरक्षक भी थे।[5] उनका व्यक्तिगत योगदान और उनके द्वारा दिया गया संरक्षण, दोनों ही भारतीय साहित्य और संस्कृति को समृद्ध बनाने में अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। हर्ष स्वयं संस्कृत भाषा के प्रकांड विद्वान थे। उन्होंने तीन प्रमुख संस्कृत नाटकों की रचना की—'नागानंद', 'रत्नावली', और 'प्रियदर्शिका'। इन नाटकों में न केवल उच्च कोटि की साहित्यिक कला देखने को मिलती है, बल्कि इनमें तत्कालीन समाज, धर्म, नीति और मानवीय संवेदनाओं का भी अद्भुत चित्रण मिलता है।'नागानंद' एक अद्वितीय धार्मिक नाटक है, जो बौद्ध धर्म की करुणा और त्याग की भावना से ओतप्रोत है। इसमें भगवान बुद्ध की शिक्षाओं और जैन-बौद्ध नैतिकताओं का समावेश देखने को मिलता है।[6] इस नाटक में हर्ष ने धार्मिक सहिष्णुता और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा पर बल दिया है।

'रत्नावली' और 'प्रियदर्शिका' मुख्यतः प्रेम और राजदरबार की राजनीति पर आधारित सामाजिक नाटक हैं, जिनमें हास्य, रोमांच, प्रेम और नीति का सुंदर संतुलन देखने को मिलता है। इन कृतियों में तत्कालीन दरबारी संस्कृति, स्त्री पात्रों की सक्रिय भूमिका तथा सामाजिक मर्यादाओं का चित्रण बहुत प्रभावशाली ढंग से किया गया है।[7] इन नाटकों की भाषा परिष्कृत, भावपूर्ण और संस्कृत साहित्य की शैली के अनुरूप है। उनके पात्र जीवन्त, संवाद सजीव और कथानक मनोरंजक होने के साथ-साथ नैतिक संदेशों से युक्त हैं। इससे स्पष्ट होता है कि हर्ष एक न केवल विद्वान लेखक थे, बल्कि अपने साहित्य के माध्यम से समाज को दिशा देने का भी कार्य कर रहे थे। हर्ष के दरबार में

अनेक प्रसिद्ध साहित्यकार और विद्वान उपस्थित रहते थे, जिनमें बाणभट्ट प्रमुख थे। बाणभट्ट ने *'हर्षचरित'* और *'कादंबरी'* जैसी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ कीं, जो उस काल की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थितियों का सजीव चित्र प्रस्तुत करती हैं। यह सब दर्शाता है कि हर्ष का दरबार साहित्यिक रचनात्मकता का केंद्र बन गया था।[8] इस प्रकार हर्षवर्धन का साहित्यिक योगदान भारतीय सांस्कृतिक नवजागरण का एक अभिन्न अंग था। उन्होंने स्वयं भी लेखन किया और दूसरों को भी प्रेरित किया, जिससे उनकी सम्राट की भूमिका के साथ-साथ एक संस्कृतिक पुरुष के रूप में भी पहचान बनी। उनकी साहित्यिक रचनाएँ आज भी संस्कृत साहित्य की धरोहर मानी जाती हैं और उनके युग को सांस्कृतिक दृष्टि से गौरवशाली बनाती हैं।[9]

हर्षवर्धन का शासनकाल धार्मिक सहिष्णुता, समन्वय और नैतिकता का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है। यद्यपि वे जन्म से शैव धर्म के अनुयायी थे और शिव की उपासना करते थे, फिर भी उन्होंने अन्य धर्मों, विशेषकर बौद्ध धर्म को न केवल सहर्ष स्वीकार किया, बल्कि उसे संरक्षण और प्रोत्साहन भी दिया।[10] उनके शासन की यह विशेषता उन्हें गुप्त शासकों की धार्मिक नीतियों से अलग और अधिक व्यापक दृष्टिकोण वाला शासक बनाती है। हर्षवर्धन ने बौद्ध धर्म के महायान संप्रदाय के प्रति विशेष आकर्षण प्रदर्शित किया। चीनी बौद्ध यात्री ह्वेनसांग, जो हर्ष के शासनकाल में भारत आया था, उसने अपने यात्रा-वृत्तांत में हर्ष के धार्मिक जीवन का विस्तृत उल्लेख किया है। ह्वेनसांग के अनुसार, हर्ष ने बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया और अनेक स्तूपों, विहारों एवं बौद्ध शिक्षण संस्थाओं का निर्माण एवं संरक्षण किया। नालंदा विश्वविद्यालय, जो उस समय बौद्ध शिक्षा का प्रमुख केंद्र था, को हर्षवर्धन ने न केवल आर्थिक सहायता दी, बल्कि वहाँ के विद्वानों को सम्मान भी दिया।[11] उन्होंने विश्वविद्यालय के विस्तार के लिए भूमि और धन का दान किया, जिससे यह संस्था पूरे एशिया में ज्ञान का केंद्र बन सकी।

इसके अतिरिक्त, हर्षवर्धन ने कन्नौज में एक भव्य बौद्ध महासभा का आयोजन किया, जिसमें दूर-दराज़ से विद्वान, भिक्षु, तीर्थयात्री और राजा-महाराजा एकत्र हुए। इस सम्मेलन का आयोजन न केवल बौद्ध धर्म के प्रति उनकी आस्था का परिचायक था, बल्कि यह धार्मिक संवाद और विचार-विनिमय का एक महत्त्वपूर्ण मंच भी बना। इस महासभा में स्वयं हर्ष ने बौद्ध धर्मग्रंथों का पाठ किया और तीन सप्ताह तक लगातार दान दिया। हर्ष की धार्मिक नीति की सबसे उल्लेखनीय विशेषता थी उसका समन्वयवादी दृष्टिकोण। वे यह मानते थे कि धर्म का उद्देश्य मानव को नैतिकता, सेवा, करुणा और सह-अस्तित्व की ओर प्रेरित करना है, न कि समाज में भेदभाव उत्पन्न करना।[12] उन्होंने ब्राह्मणों को भी दान दिया, जैनों को सम्मान दिया और शैव, वैष्णव, बौद्ध, जैन सभी सम्प्रदायों के धार्मिक स्थलों को संरक्षण प्रदान किया। इससे स्पष्ट होता है कि उनका दृष्टिकोण धर्मनिरपेक्ष और नैतिक मूल्यों पर आधारित था। हर्ष के शासन में धर्म का उपयोग केवल निजी साधना तक सीमित नहीं था, बल्कि वह राजनीति और समाज के नैतिक आधार के रूप में कार्य करता था। वे मानते थे कि राजा का कर्तव्य केवल शासन करना नहीं, बल्कि समाज में नैतिकता और सेवा की भावना को प्रसारित करना भी है। यही कारण था कि वे नियमित रूप से दान-पुण्य करते, विद्वानों और साधु-संतों का सम्मान करते, तथा प्रजा के कल्याण को सर्वोपरि मानते थे। इस प्रकार हर्षवर्धन का धर्म और दर्शन भारतीय परंपरा के उस आदर्श को मूर्त रूप देते हैं, जिसमें सर्वधर्म समभाव, करुणा, नैतिकता, और धार्मिक सह-अस्तित्व के तत्व प्रमुख होते हैं। उनके शासनकाल को धार्मिक उदारता, दर्शनिक गहराई और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा का युग कहा जा सकता है।[13]

हर्षवर्धन का काल न केवल साहित्य और धर्म के क्षेत्र में समृद्ध था, बल्कि कला और स्थापत्य की दृष्टि से भी एक महत्वपूर्ण युग था। गुप्त काल की भव्य कला परंपरा के बाद हर्ष के शासन में उस कला परंपरा को एक नई दिशा और चेतना मिली, जिसमें धार्मिक भावनाओं, नैतिक मूल्यों और सांस्कृतिक आदर्शों का समावेश स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।[14] हर्षवर्धन स्वयं एक संवेदनशील और कलाप्रिय शासक थे, जिन्होंने कला को केवल सौंदर्य का विषय नहीं माना, बल्कि उसे धार्मिक और नैतिक विचारों के संप्रेषण का माध्यम भी माना। उनके शासन में बौद्ध विहारों, हिंदू मंदिरों और जैन मठों का निर्माण बड़े पैमाने पर हुआ। इन स्थापत्य संरचनाओं में भव्यता की अपेक्षा

सादगी, शांति और साधना का भाव अधिक दिखाई देता है, जो उस समय के धार्मिक वातावरण और हर्ष के समन्वयवादी दृष्टिकोण का प्रमाण है। बौद्ध धर्म के प्रति हर्ष की आस्था के कारण उनके काल में विशेषतः महायान बौद्ध स्थापत्य को बढ़ावा मिला। अनेक विहारों और स्तूपों का निर्माण कराया गया, जिनमें प्रार्थना सभागार, ध्यानकक्ष, भिक्षुओं के लिए निवास और पुस्तकालय जैसी सुविधाएँ होती थीं। इन संरचनाओं में ईंट और पत्थर का संयोजन देखने को मिलता है, जो गुप्तकालीन स्थापत्य का विकास रूप है।

नालंदा विश्वविद्यालय, यद्यपि गुप्त काल में स्थापित हुआ था, परंतु हर्षवर्धन के शासन में उसका विस्तार हुआ और उसमें स्थापत्य की दृष्टि से कई नवीन इमारतों का निर्माण हुआ। इनमें विहारों की सुंदर श्रृंखलाएँ, बहुमंजिला शैक्षणिक भवन, पुस्तकालय और ध्यानकक्ष शामिल थे, जो तत्कालीन वास्तुकला के उत्कृष्ट उदाहरण माने जाते हैं। हर्ष के समय में बने मंदिरों में धार्मिक प्रतीकों, देवी-देवताओं की मूर्तियों और सजावटी खंभों का प्रयोग सीमित किंतु सारगर्भित रूप में किया गया। इन मंदिरों में सरलता, अनुपात और संतुलन की भावना प्रमुख रही, जो स्थापत्य को शुद्ध धार्मिक आस्था से जोड़ती है। इसके अतिरिक्त उनके शासनकाल में चित्रकला और मूर्तिकला में भी गति देखने को मिलती है। हालांकि बहुत-सी संरचनाएँ कालांतर में नष्ट हो गईं, फिर भी उपलब्ध अवशेषों और ह्वेनसांग के विवरण से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हर्ष का दरबार कलाकारों और शिल्पियों के लिए एक केंद्र बन चुका था।[15] हर्षवर्धन द्वारा कन्नौज, प्रयाग, और अन्य नगरों में किए गए निर्माण धार्मिक आयोजनों के साथ-साथ सांस्कृतिक आयोजन स्थलों के रूप में भी महत्त्वपूर्ण रहे। प्रयाग में आयोजित उसकी महासभा के लिए अस्थायी भव्य मंडप का निर्माण करवाया गया था, जिसमें स्थापत्य के तात्कालिक कौशल और कलात्मकता की झलक मिलती है। इस प्रकार, हर्षवर्धन के काल की कला और स्थापत्य न केवल धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की अभिव्यक्ति थी, बल्कि उन्होंने उस युग की आत्मा को भी आकार दिया। उनकी स्थापत्य कला में जहाँ एक ओर सौंदर्यबोध और शांति की भावना थी, वहीं दूसरी ओर एक गहरी धार्मिक चेतना और नैतिक मूल्य भी परिलक्षित होते हैं। यह काल वास्तव में भारतीय कला इतिहास में एक सादा किन्तु गूढ़ संदेशवाहक युग रहा। हर्षवर्धन का शासन न केवल एक राजनैतिक सत्ता था, बल्कि एक नैतिक और सामाजिक आदर्श भी था, जिसका मुख्य उद्देश्य प्रजा के कल्याण और समाज में न्याय की स्थापना था।[16] चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने यात्रा-वृत्तांत में हर्ष के शासन की इस लोक-कल्याणकारी नीति का विशेष उल्लेख किया है। ह्वेनसांग के अनुसार, हर्षवर्धन ने अपने पूरे जीवन को जन-कल्याण के लिए समर्पित कर दिया था और उन्होंने यह सिद्ध किया कि एक राजा का परम कर्तव्य केवल शासन करना नहीं, बल्कि प्रजा की सुख-समृद्धि सुनिश्चित करना भी है।

हर्ष की कर-व्यवस्था अत्यंत न्यायसंगत और सुव्यवस्थित थी। उन्होंने कराधान का ऐसा संतुलन रखा कि किसानों और व्यापारियों पर अत्यधिक बोझ न पड़े, जिससे आर्थिक गतिविधियाँ सुचारू रूप से चलती रहीं। कर प्रणाली में पारदर्शिता और निष्पक्षता थी, जिससे प्रजा में शासन के प्रति विश्वास बना रहता था। उनकी दंड नीति भी नैतिकता पर आधारित थी।[17] दंड केवल अपराध को रोकने के लिए था, न कि मनुष्य को पीड़ित करने के लिए। दंड में न्याय, दया और सुधार की भावना निहित थी। इस नीति से समाज में शांति और अनुशासन बना रहता था, और अपराध दर कम थी। हर्षवर्धन हर पाँच वर्ष में 'महामोक्ष पर्व' का आयोजन करते थे, जो उनके शासनकाल की एक महत्वपूर्ण सामाजिक और धार्मिक परंपरा थी। इस पर्व में सम्राट स्वयं अनेक गरीबों, ब्राह्मणों, भिक्षुओं और जरूरतमंदों को धन, वस्त्र, भोजन आदि का दान करते थे। यह आयोजन न केवल सामाजिक समरसता का प्रतीक था, बल्कि लोगों के बीच दान और सेवा की भावना को भी प्रोत्साहित करता था। महामोक्ष पर्व के दौरान धार्मिक अनुष्ठान, संस्कृतिपरक आयोजन और ज्ञान-वर्धक चर्चाएँ भी होती थीं, जो समाज के नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान में सहायक थीं। हर्ष का यह लोक-कल्याणकारी दृष्टिकोण उनके समग्र दार्शनिक विश्वास से प्रेरित था, जिसमें राजा का कर्तव्य केवल सत्ता का प्रयोग करना नहीं, बल्कि समाज में न्याय, धर्म और नैतिकता की स्थापना करना था।[18] वे मानते थे कि एक राजा का वास्तविक सामर्थ्य उसके दयालु और न्यायप्रिय व्यवहार में निहित होता है। इसलिए उन्होंने शासन को एक नैतिक दायित्व के रूप में ग्रहण किया और जनता की भलाई के लिए निरंतर कार्य किया। इस प्रकार, हर्षवर्धन का शासनकाल एक आदर्श

International Journal of All Research Education and Scientific Methods (IJARESM),
ISSN: 2455-6211, Volume 13, Issue 5, May-2025, Available online at: www.ijaresm.com

लोक-कल्याणकारी राज्य की मिसाल था, जहाँ नीति, न्याय, सेवा और दया को शासन का आधार माना गया। उनके नैतिक दृष्टिकोण ने भारतीय राजशाही की परंपराओं को पुनः सजग किया और शासन के दार्शनिक महत्व को भी उजागर किया।

भारतीय दर्शनशास्त्र और राजनैतिक चिंतन में राजा का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण और विशिष्ट माना गया है। प्राचीन ग्रंथों जैसे कि *अर्थशास्त्र*, *धर्मशास्त्र* और *रामायण* में राजा को केवल एक सैन्य या प्रशासनिक प्रमुख नहीं, बल्कि समाज के धर्म के संरक्षक और नैतिक आदर्श के रूप में स्थापित किया गया है। राजा की भूमिका केवल सत्ता के संचालन तक सीमित नहीं होती, बल्कि उसे समाज में न्याय, धर्म और व्यवस्था कायम रखने वाला सर्वोच्च अधिकारी माना जाता है। वह समाज की नैतिकता और धार्मिकता का संरक्षक होता है, जिसके कर्तव्य होते हैं—जन-कल्याण, सामाजिक समरसता और धार्मिक नियमों का पालन सुनिश्चित करना।[19] हर्षवर्धन अपने इस पारंपरिक भारतीय राजकीय आदर्श के पूर्णतः अनुरूप थे। उनका शासन केवल भौतिक शक्ति के प्रदर्शन का माध्यम नहीं था, बल्कि वे एक ऐसे शासक थे जिन्होंने धर्म और नीति को शासन की नींव बनाया। हर्ष स्वयं एक विद्वान, दार्शनिक और धार्मिक सोच के गहरे अनुयायी थे, जिन्होंने सत्ता का उपयोग न केवल राजनीतिक साम्राज्य विस्तार के लिए, बल्कि समाज के नैतिक उत्थान और सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए किया।[20]

हर्ष का यह दृष्टिकोण कि राजा का कर्तव्य केवल शासन चलाना नहीं बल्कि धर्म की रक्षा, नीति का पालन और जनता की सेवा करना है, भारतीय राजनैतिक दर्शन की परंपरा में गहराई से निहित है। उन्होंने स्वयं अपने शासनकाल में इस आदर्श को जीवंत करते हुए नीति-निर्माण में नैतिकता को सर्वोपरि रखा। उनके लिए न्याय का अर्थ था—सभी वर्गों को बराबर अवसर और सुरक्षा प्रदान करना, दंड और पुरस्कार का पारदर्शी तथा नैतिक आधार पर होना, और प्रजा के कल्याण के लिए कठोर निर्णय लेने में कोई कंजूसी न करना। हर्षवर्धन का शासन इस दृष्टि से भी अनूठा था कि वे केवल एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति नहीं थे, बल्कि एक धार्मिक समन्वयक थे।[21] वे समझते थे कि भिन्न-भिन्न धर्म, सम्प्रदाय और सामाजिक समूह होते हुए भी सभी का लक्ष्य समान होना चाहिए — मानवता की सेवा और सामाजिक न्याय। इस सोच ने उन्हें एक दार्शनिक शासक के रूप में स्थापित किया, जो धर्म की जटिलताओं को समझकर शासन को समरस और उदार बनाता था। राजा की भूमिका के प्रति उनकी यह गहरी समझ उनकी व्यक्तिगत जीवनशैली और शासन नीतियों में झलकती है। वे स्वयं दान, तपस्या और धार्मिक अनुष्ठानों में सक्रिय रूप से भाग लेते थे। उन्होंने जनता के बीच जाकर उनके दुःख-दर्द को समझा और उन्हें दूर करने के उपाय किए। उनकी नीतियाँ और कार्यक्रम इस बात के प्रमाण हैं कि वे केवल सत्ता के संरक्षक नहीं, बल्कि एक नैतिक नेता थे, जिनका उद्देश्य समाज में स्थिरता, शांति और विकास स्थापित करना था।[22]

भारतीय दर्शन के अनुसार, राजा वह व्यक्ति होता है जो राज्य को केवल बाह्य रूप से नहीं, बल्कि आंतरिक रूप से भी नियंत्रित करता है—अपने मन, व्यवहार और निर्णयों में धर्म और नैतिकता की प्रधानता रखते हुए। हर्षवर्धन ने अपने शासनकाल में इसी दर्शन को व्यवहारिक रूप दिया। वे अपने आप को प्रजा का सेवक मानते थे, न कि केवल उसके स्वामी। उनके यहाँ शासन का मूल आधार था—सेवा, न्याय और नैतिकता। इस प्रकार हर्षवर्धन की भूमिका एक आदर्श राजा के रूप में सामने आती है, जो भारतीय दार्शनिक परंपरा के धर्म-राज्य की संकल्पना को साकार करता है। वे एक ऐसे शासक थे, जिन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि शक्ति के साथ नैतिक दायित्व और धार्मिक उत्तरदायित्व जुड़ा होता है, और यदि राजा धर्म और नीति का पालन करता है तो समाज में समरसता, प्रगति और खुशहाली सुनिश्चित होती है। इस व्यापक दार्शनिक दृष्टिकोण के कारण हर्षवर्धन का शासन काल न केवल राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास में बल्कि भारतीय दार्शनिक परंपरा में भी एक स्वर्णिम युग के रूप में याद किया जाता है।[23] उनका शासन इस बात का जीता जागता उदाहरण था कि कैसे एक राजा अपने कर्तव्य और नैतिक दायित्वों को समझते हुए, अपने साम्राज्य को स्थिर, समृद्ध और धर्मनिरपेक्ष बना सकता है।

International Journal of All Research Education and Scientific Methods (IJARESM),
ISSN: 2455-6211, Volume 13, Issue 5, May-2025, Available online at: www.ijaresm.com

हर्षवर्धन के शासन में प्रशासनिक व्यवस्था को केवल कागजी या तांत्रिक प्रक्रिया नहीं माना गया, बल्कि इसे नैतिक और धार्मिक मूल्यों के आधार पर स्थापित किया गया। उनका दृढ़ विश्वास था कि शासन तभी सफल और स्थायी हो सकता है जब उसकी नींव न्याय, धर्म और नैतिकता पर टिकी हो।[24] इसलिए हर्षवर्धन ने अपने प्रशासनिक ढांचे को इस प्रकार संगठित किया कि उसमें धर्माधिकारियों, विद्वानों और नैतिक विचारकों की सक्रिय भूमिका सुनिश्चित हो, ताकि शासन की नीतियाँ और निर्णय केवल विधि सम्मत ही नहीं, बल्कि नैतिक दृष्टि से भी सही हों। उनके शासनकाल में धर्माधिकारी, जिन्हें राज्य के धार्मिक और नैतिक संरक्षक माना जाता था, प्रशासनिक कार्यों में विशेष महत्व रखते थे। ये धर्माधिकारी न केवल धार्मिक कृत्यों और अनुष्ठानों का संचालन करते थे, बल्कि सामाजिक व्यवस्था और न्याय प्रणाली के नैतिक पक्ष की देखरेख भी करते थे। उनकी उपस्थिति न्यायालयों में आवश्यक थी, जिससे यह सुनिश्चित होता था कि सभी न्यायिक निर्णय समाज के नैतिक हितों के अनुरूप हों। इस प्रकार धर्म और न्याय व्यवस्था के बीच एक गहरा समन्वय स्थापित हुआ, जो शासन में नैतिकता और धर्म की प्रतिष्ठा को बनाए रखने में सहायक था।[25]

न्यायपालिका की स्वतंत्रता हर्षवर्धन के शासन की एक बड़ी उपलब्धि थी। वे न्यायाधीशों को प्रशासनिक दबावों से मुक्त रखते थे ताकि वे निष्पक्ष, स्वतंत्र और न्यायसंगत निर्णय दे सकें। न्यायिक प्रक्रिया में विद्वानों और नैतिक चिंतकों की सलाह महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी, जिससे न्याय केवल नियम-कानून तक सीमित न रहकर समाज के व्यापक नैतिक और धार्मिक सिद्धांतों के अनुरूप हो। इससे जनता का शासन और न्यायपालिका पर विश्वास बढ़ा और सामाजिक शांति बनी रही। हर्षवर्धन ने प्रशासनिक अधिकारियों को न केवल कर्तव्यों का पालन करने वाला माना, बल्कि उनसे नैतिक उत्तरदायित्व की अपेक्षा भी रखी। प्रशासनिक अधिकारियों को भ्रष्टाचार, अन्याय और मनमानी से बचने के लिए कड़े नियमों के अधीन रखा गया। अधिकारियों के व्यवहार और कार्यप्रणाली की नियमित समीक्षा होती थी, ताकि वे समाज की सेवा और जनहित को सर्वोपरि रखें। प्रजा के प्रति संवेदनशीलता, निष्पक्षता और सेवा भावना को प्रशासन की अनिवार्य योग्यता माना गया। इसके अतिरिक्त, हर्षवर्धन के शासन में पारदर्शिता और जवाबदेही को भी महत्वपूर्ण माना गया। शासन की नीतियाँ और फैसले खुलकर जनता के सामने रखे जाते थे, जिससे जनता में प्रशासन के प्रति विश्वास और सहमति बनती थी। वे जनता के सुझावों और शिकायतों को गंभीरता से लेते थे, जिससे शासन व्यवस्था जनता के हित में और अधिक प्रभावी बनती थी। हर्षवर्धन के इस नैतिक प्रशासनिक ढांचे ने उनके राज्य को राजनीतिक स्थिरता के साथ-साथ सामाजिक समरसता और आर्थिक प्रगति का भी अवसर दिया।[26] प्रजा को शासन की ओर से सुरक्षा, न्याय और कल्याण की भावना प्राप्त हुई, जिससे वे अपने जीवन में संतुष्ट और आश्वस्त थे। इस प्रकार, हर्षवर्धन का प्रशासन केवल शक्ति संचयन का साधन नहीं था, बल्कि एक सत्य, धर्म और न्याय पर आधारित लोक-सेवा केंद्र था, जिसने भारतीय प्रशासनिक इतिहास में नैतिकता के आदर्श स्थापित किए। आज भी हर्षवर्धन के प्रशासनिक सिद्धांतों को आदर्श माना जाता है, क्योंकि उन्होंने यह दिखाया कि शासन में नैतिकता का स्थान केवल महत्वपूर्ण नहीं, बल्कि अनिवार्य है। उनका शासन इस बात का उदाहरण है कि जब प्रशासन धर्म और नैतिकता के मार्ग पर चलता है, तभी समाज में स्थिरता, शांति और समृद्धि बनी रहती है।[27] हर्षवर्धन का यह प्रशासनिक मॉडल भारतीय इतिहास के लिए एक प्रेरणादायक धरोहर है, जो आधुनिक शासन और प्रशासन के लिए भी प्रासंगिक है।

हर्षवर्धन का शासन भारतीय इतिहास के ऐसे दौर में आया जब गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद पूरे उत्तरी भारत में राजनीतिक अव्यवस्था और सामाजिक अस्थिरता व्याप्त थी। उस समय कई छोटे-छोटे राजवंश और स्थानीय शासक सत्ता के लिए प्रतिस्पर्धा कर रहे थे, जिससे देश में राजनीतिक एकता और सामाजिक स्थिरता का अभाव था। ऐसे कठिन समय में हर्षवर्धन ने एक विशाल और सशक्त साम्राज्य की स्थापना कर न केवल राजनीतिक स्थिरता बहाल की, बल्कि उसे एक नए सांस्कृतिक और नैतिक पुनरुत्थान के केंद्र के रूप में भी स्थापित किया। उनका शासनकाल भारतीय इतिहास में एक स्वर्ण युग माना जाता है, क्योंकि उन्होंने सत्ता के साथ-साथ धर्म, कला, साहित्य, शिक्षा और सामाजिक मूल्यों को भी महत्व दिया। हर्षवर्धन का यह विचार था कि एक राजा का कर्तव्य केवल युद्ध और सत्ता का विस्तार करना नहीं, बल्कि अपने प्रजाजन के जीवन को सुखमय, न्यायपूर्ण और संस्कृतिपरक बनाना भी है। इस विचारधारा ने उनके शासन को एक

लोक-कल्याणकारी शासन की शक्ल दी, जो बाद के राजाओं और शासकों के लिए आदर्श बन गया। हर्षवर्धन ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनाई, जो उनके समय में बहुत महत्वपूर्ण थी क्योंकि भारत विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों का संगम स्थल था। वे स्वयं शैव मत के अनुयायी थे, फिर भी उन्होंने बौद्ध धर्म का संरक्षण किया और नालंदा जैसे महान बौद्ध शिक्षण केन्द्रों को प्रोत्साहन दिया। इस नीति ने भारत में धार्मिक समन्वय और बहुलवाद को बढ़ावा दिया, जो बाद के युगों में भी भारतीय समाज की प्रमुख विशेषता बनी। उनका यह समन्वयवादी दृष्टिकोण न केवल धार्मिक संघर्षों को कम करता था, बल्कि विभिन्न सांस्कृतिक और धार्मिक समुदायों को एक साथ जोड़ने का काम भी करता था। हर्षवर्धन के शासनकाल में साहित्य और कला का भी जबरदस्त विकास हुआ। उनकी स्वयं की नाट्यरचनाएँ, दरबार में विद्वानों और कवियों का संगम, और शिक्षा के प्रति उनका गहरा समर्पण इस बात का प्रमाण है कि वे एक सच्चे संस्कृतिप्रेमी शासक थे। उनकी नीति से प्रेरित होकर बाद के शासकों ने भी शिक्षा और कला के क्षेत्र में सुधार और संरक्षण के काम किए। नालंदा विश्वविद्यालय जैसे प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थान उनके संरक्षण और प्रोत्साहन से विश्व के शैक्षणिक केंद्र बने, जिनका प्रभाव न केवल भारत बल्कि पूरे एशिया तक फैला।[28/] राजनीतिक और प्रशासनिक दृष्टि से भी हर्षवर्धन का शासन एक आदर्श मॉडल था। उन्होंने न्यायपालिका को स्वतंत्र और नैतिक रूप से सशक्त बनाया, जिससे शासन में जन-विश्वास और सामाजिक न्याय स्थापित हुआ। उनके प्रशासनिक सिद्धांत और लोक-कल्याणकारी नीतियाँ कई सदियों तक भारतीय राजव्यवस्था के लिए प्रेरणा का स्रोत बनीं।

उनकी विरासत का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि उन्होंने भारतीय शासकों के लिए यह स्पष्ट कर दिया कि शासन केवल सत्ता और विजय की लड़ाई नहीं, बल्कि एक नैतिक जिम्मेदारी और सामाजिक सेवा भी है। यही कारण है कि हर्षवर्धन का नाम भारतीय इतिहास के महान और धर्मपरायण शासकों में शुमार होता है। आज भी इतिहासकार, दार्शनिक और सामाजिक विद्वान हर्षवर्धन के शासनकाल को एक ऐसे युग के रूप में देखते हैं जिसने न केवल तत्कालीन राजनीतिक संकट को सुलझाया, बल्कि भारतीय समाज को एक समृद्ध और नैतिक दिशा दी। उनके आदर्श आज के समय में भी शासन के नैतिक पक्ष, धार्मिक सहिष्णुता और सांस्कृतिक संरक्षण के लिए एक महत्वपूर्ण प्रेरणा हैं। इस प्रकार हर्षवर्धन का शासनकाल न केवल उनके समकालीनों के लिए, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी एक दीर्घकालिक प्रेरणा और मार्गदर्शक बना। उन्होंने भारतीय इतिहास में यह संदेश दिया कि सत्ता के साथ नैतिकता, धर्म और संस्कृति का संतुलन ही समाज की सच्ची उन्नति का आधार होता है। उनकी यह अमूल्य विरासत आज भी भारतीय सांस्कृतिक और प्रशासनिक जीवन की रीढ़ की तरह कार्य करती है।[29]

हर्षवर्धन का काल न केवल राजनीतिक समृद्धि और साम्राज्य विस्तार का समय था, बल्कि यह भारतीय इतिहास में संस्कृति, धर्म, दर्शन और नैतिक शासन का एक स्वर्णिम अध्याय भी साबित हुआ। गुप्तोत्तर काल की राजनीतिक उथल-पुथल के बाद हर्षवर्धन ने उत्तर भारत के व्यापक भूभाग को एक सशक्त और संगठित राज्य में परिवर्तित कर न केवल राजनीतिक स्थिरता बहाल की, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को भी नई दिशा प्रदान की। उनके शासनकाल में धर्म और नीति का समन्वय स्थापित हुआ, जिससे समरसता, सहिष्णुता और न्याय के आदर्श पूरे समाज में फैल सके। उनका साहित्यिक योगदान, विशेषकर संस्कृत नाटकों जैसे 'नागानंद', 'रत्नावली' और 'प्रियदर्शिका', भारतीय साहित्य की समृद्ध परंपरा को एक नई ऊँचाई प्रदान करता है। ये कृतियाँ न केवल मनोरंजक हैं, बल्कि उनमें धार्मिक, नैतिक और दार्शनिक तत्वों की गहनता भी देखने को मिलती है, जो उस काल के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का प्रतिबिंब हैं। इसके अतिरिक्त, हर्षवर्धन की धार्मिक सहिष्णुता ने विभिन्न मतों और सम्प्रदायों के बीच समरसता और सह-अस्तित्व को बढ़ावा दिया, जो भारतीय समाज की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है।

हर्षवर्धन का प्रशासनिक ढांचा भी अत्यंत अनुकरणीय था। न्यायपालिका की स्वतंत्रता, प्रशासनिक नैतिकता, और लोक-कल्याणकारी नीतियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि उनका शासन केवल सत्ता के प्रदर्शनी का माध्यम नहीं था, बल्कि एक नैतिक और धार्मिक दायित्व के रूप में देखा जाता था। उन्होंने शासन को जनसेवा का माध्यम माना और दान, धर्म तथा सेवा को शासन का अभिन्न अंग बनाया। उनकी

यह दृष्टि आज भी आधुनिक शासन प्रणाली के लिए प्रेरणादायक है। हर्षवर्धन की विरासत का प्रभाव केवल उनके समकालीनों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उनके आदर्श, नीतियाँ और सांस्कृतिक प्रोत्साहन ने आने वाले शताब्दियों तक भारतीय राजव्यवस्था, साहित्य और दर्शन को प्रभावित किया।[30] उन्होंने यह स्थापित किया कि एक सफल और सशक्त शासन के लिए राजनीतिक शक्ति के साथ-साथ नैतिकता, न्याय और सांस्कृतिक संवेदनशीलता अनिवार्य हैं। उनकी यह सोच आज के लोकतांत्रिक और बहुसांस्कृतिक भारत के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक है। हर्षवर्धन का शासनकाल न केवल इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है, बल्कि भारतीय सभ्यता के सांस्कृतिक और नैतिक विकास का एक मजबूत स्तम्भ भी है। उनकी उपलब्धियाँ और आदर्श हमें यह सिखाते हैं कि सत्ता और संस्कृति, धर्म और न्याय, राजनीति और नैतिकता का संतुलन समाज की स्थिरता और प्रगति के लिए आवश्यक है। इसीलिए हर्षवर्धन को भारतीय इतिहास में एक महान शासक, विद्वान और नैतिक राजा के रूप में स्मरण किया जाता है, जिनकी विरासत आज भी हमारे लिए प्रेरणा और मार्गदर्शन का स्रोत है।

हर्षवर्धन का शासनकाल भारतीय इतिहास में एक ऐसे युग का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें सांस्कृतिक नवजागरण और नैतिक शासन के तत्वों का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। इस काल में साहित्य, धर्म, कला और दर्शन का व्यापक विकास हुआ, जिसे हर्ष के संरक्षण और उनके व्यक्तिगत नैतिक आचरण ने संभव बनाया। उन्होंने न केवल बौद्ध धर्म को प्रोत्साहित किया, बल्कि ब्राह्मण धर्म, जैन धर्म और अन्य परंपराओं के प्रति भी सहिष्णु दृष्टिकोण अपनाया। उनके शासन में प्रयाग का महास्नान, कन्नौज की धर्मसभा और दान-धर्म संबंधी कार्य सामाजिक समरसता और नैतिक मूल्यों की पुष्टि करते हैं। हर्ष स्वयं संस्कृत नाट्यकार थे और उनके काव्य-नाटकों में धार्मिक सहिष्णुता, करुणा और नैतिकता जैसे तत्त्व विद्यमान हैं। उनके शासन में धर्म और नीति एक-दूसरे के पूरक बनकर लोककल्याण की दिशा में कार्यरत थे। अतः यह कहा जा सकता है कि हर्षवर्धन का शासन केवल राजनीतिक स्थायित्व का प्रतीक नहीं था, बल्कि वह भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण और नैतिक शासन परंपरा का एक ऐतिहासिक और दार्शनिक प्रतिमान भी था।

संदर्भ

[1]. शर्मा, राम शरण, *प्राचीन भारत का सामाजिक और आर्थिक इतिहास*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ. 217

[2]. वही, पृ. 217

[3]. उपाध्याय, वासुदेव शरण, *भारत का सांस्कृतिक इतिहास*, भारती भवन, वाराणसी, 2005, पृ. 328

[4]. त्रिपाठी, राम शरण, *प्राचीन भारत का इतिहास*, केंद्रीय हिन्दी संस्थान, इलाहाबाद, 2003, पृ. 389

[5]. झा, डी. एन., *प्राचीन भारत: एक इतिहास*, मैनकाइंड पब्लिशिंग, दिल्ली, 2008, पृ. 242

[6]. थापर, रोमिला, *भारत का इतिहास*, पेंगुइन, नई दिल्ली, 2002, पृ. 114

[7]. मजूमदार, आर. सी., *प्राचीन भारत*, मोटिलाल बनारसीदास, वाराणसी, 2000, पृ. 351

[8]. बशाम, ए. एल., *भारत की सांस्कृतिक विरासत*, पीपुल्स पब्लिशिंग, दिल्ली, 1998, पृ. 368

[9]. वही, पृ. 366

[10]. वही, पृ. 369

[11]. सिंह, उपेन्द्र, *प्राचीन और प्रारंभिक मध्यकालीन भारत*, पियरसन, दिल्ली, 2016, पृ. 419

[12]. चक्रवर्ती, नीलकंठ शास्त्री, *प्राचीन भारत का इतिहास*, ओरिएंट ब्लैकस्वान, कोलकाता, 1997, पृ. 432

[13]. थापर, रोमिला, *उपरोक्त*, पृ. 116

[14]. कोसंबी, डी. डी., *भारतीय सभ्यता और संस्कृति*, लोकभारती, दिल्ली, 2006, पृ. 202

[15]. वही, पृ. 213

[16]. वही, पृ. 217

[17]. मजूमदार, आर. सी., *प्राचीन भारत*, मकमिलन पब्लिकेशन, कोलकाता, 2002, पृ. 301

[18]. ठाकुर, विजय कुमार, *मध्यकालीन भारत का सामाजिक इतिहास*, खादी ग्रामोद्योग प्रकाशन, पटना, 1992, पृ. 57

[19]. *वही*, पृ. 57

[20]. पाठक, वी. एस., *प्राचीन भारत में धर्म और नैतिकता*, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1995, पृ. 315

[21]. शर्मा, टी. आर., *हर्षवर्धन और उसका युग*, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 2001, पृ. 97

[22]. शर्मा, राम शरण, *उपरोक्त*, पृ. 217

[23]. वेंकट रमण, जी., *भारत का दार्शनिक इतिहास*, यूनिवर्सिटी प्रेस, मद्रास, 1993, पृ. 269

[24]. *वही*, पृ. 267

[25]. सेन, अमलेन्दु, *धार्मिक आंदोलन और सांस्कृतिक पुनर्जागरण*, राधाकृष्णन प्रकाशन, कोलकाता, 1999, पृ. 223

[26]. शास्त्री, के. ए. नीलकंठ, *दक्षिण भारत का इतिहास*, मद्रास यूनिवर्सिटी प्रेस, मद्रास, 1984, पृ. 386

[27]. वही, पृ. 389

[28]. गोस्वामी, सतीश चंद्र, *हर्षकालीन भारत*, विश्वभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007, पृ. 149

[29]. पाण्डेय, सुरेन्द्र नाथ, *प्राचीन भारत में नैतिक शासन की अवधारणा*, नवभारत पब्लिशिंग, दिल्ली, 2012, पृ. 88

[30]. झा, पांडुरंग, *दार्शनिक परंपराएं और शासन दृष्टि*, विद्याश्री प्रकाशन, पटना, 2014, पृ. 177